International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 3,Issue 3,March 2015 ISSN: 2320-2882(online)

ORIGINAL ARTICLE

Impact Factor:-0.345(GIF)
www.ijcrt.net

समाधि की परिभाषा

राहुल पचौरी
सहायक चिकित्सक योग एवं
प्राकृतिक चिकित्सा
प्राचार्य योग एवं नेचुरोपेथी
महाविद्यालय भोपाल

अमृतनादोपनिषद् में समाधि उस स्थिति को कहा गया है जिसमें व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त कर अपने आपको भी उसी के समान जान लेता है क्षुरिकोषनिषद में समाधि के द्वारा साधक जन्म मरण से छुटकारा पाकर मुक्ति प्राप्त करता है और कभी फिर संसार चक्रमें नही पड़ता। तेज बिन्दुपरिषद में समधि के द्वारा विशुद्ध ब्रहत्व की प्राप्ति बताई है। दर्शनो पनिषद में समाधि के स्वरूप का विवेचन किया गया है। समाधि के द्वारा सांसारिक जीवन से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। समाधि के द्वारा जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सचमुच में आत्मा और ब्रह्मा का भेद भ्रान्ति पूर्ण है, वास्तविक नहीं। इस प्रकार के ज्ञन की अवस्था समाधि है। योगकुण्डल्युपनिषद् में भी समाधि का वर्णन है, तथा समाधि के द्वारा शुद्ध ब्रह्मारूप प्राप्त होना बताया गया है। योगतत्वोषनिषद् के अनुसार समाधि में जीवात्म और परमात्मा की समान अवस्था की स्थिति हो जाती है। शाण्डिल्यो पनिपद में भी समाधि को जीवात्मा और परमात्मा की एकता की अवस्था बताया गया है जिसमें ज्ञाता ज्ञान और श्रेय की त्रिपुटी नहीं रह जाती है। यह असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था है जिसको आत्मविश्वास ज्ञान और गुरू में श्रद्धा होगी उसे समाधि शीघ्र प्राप्त हो जाती है। चित्त को शरीर इन्द्रियादि से हटाकर परमात्मा में लीन करना समाधि है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार यह समाधि ध्यान समाधि नादसमाधि रसानन्दसमाधि तथा लयसमाधि के भेद से चार प्रकार की होती है। ध्यानसमाधि शाम्भवीमुद्रा, नादसमाधि खेचरी मुद्रा तथा लयसमाधि योनि मुद्रा के द्वारा सिद्ध होती है। पॉचवी भक्ति योग समाधि है और छठी राजयोग समाधि है, जो कि मनोमूर्च्छा कुम्भक के द्वारा प्राप्त होती है। समाधि के द्वारा कैवल्य प्राप्त होता है और समस्त इच्छाओं से निवृत्ति प्राप्त हो जाती है। समाधि के पूर्णरूप से प्राप्त होने पर स्त्री, पुत्र धन आदि किसी के प्रति राग नहीं रह जाता। समाधि के जानने पर फिर जन्म नहीं होता है।

हठयोग संहिता में भी समाधि का वर्णन किया गया है। हठयोग की समाधि प्राणायाम के द्वारा सिद्ध होती है। वायु के निरोध के द्वारा मन निरूद्ध होता है। अतः वायु के निरोध से समाधि अवस्था प्राप्त होती है। प्राणायाम और ध्यान इसमें दोनों की सिद्धि साथ–साथ होकर समाधि सिद्ध होती है। योग साधन का अंतिम फल समाधि है। इससे मन को शरीर से हटाकर लय करके स्वरूप को प्राप्त किया जाता है। साधक इस स्थिति में अद्वितीय नित्य, मुक्त, सच्चिदानंद ब्रह्मारूप होने का अनुभव करता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही योगभ्यास किया जाता है। महादेवानंद सरस्वती जी ने समाधि की जीवात्मा और परमात्मा की तादात्म्य अवस्था बताई है। इस अवस्था में समस्त चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है तथा

Please cite this Article as: *राहुल पचौरी,* समाधि की परिभाषा**,** International Journal Of Creative Research Thoughts, Volume 3, Issue.3, March 2015

आत्मा का अज्ञान के कारण स्थूल सूक्ष्म तथा कारण शरीर से जो संबंध स्थापित हुआ है वह समाप्त हो जाता है। पूर्णरूप से आत्मा और परमात्मा का तादात्म्य प्राप्त होना ही जीवन मुक्त अवस्था है। जिसमें अविद्या पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाती है।

हठयोग प्रदीपिका में समाधि को मृत्यु का निवारणकर्ता अर्थात् अपनी इच्छा से देह त्याग करने की सामथ्य प्रदान करने वाला कहा गया है। इसके द्वारा निर्विकार स्वरूप मे स्थिति होती है। समाधि के वाचक शब्दों का वर्णन भी हठयोग प्रदीपिका में किया गया है। राजयोग समाधि, उन्मनी, मनोत्मनी, अमरत्व, लयतत्व शून्याशून्य, परमपद अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरजंन जीवनमुक्त, सहजा तथा तुर्या ये सब शब्द समाधि के ही घोतक है।

वास्तव में समाधि चित्त की एक विशिष्ट सूक्ष्म अवस्था है जिसके द्वारा ध्येय विषय का विश्लेषण होकर उसके सूक्ष्म अज्ञात स्वरूप का संदेह संशय है। समाधि के द्वारा अतीन्द्रिय विषयों का साक्षात्काररूपी विशेष ज्ञान माक्ष का साधन होता है। इसमें (समाधि में) तम रूपी मल का आवरण हट जाता है तथा चित्त निर्मलता को प्राप्त कर लेता है। चित्त के निर्मल होने पर ध्येय विषय का यथार्थ ज्ञान होना स्वाभाविक ही है। चित्त की इस अवस्था के प्राप्त हुए बिना यथार्थ ज्ञान संभंव नहीं है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों की पात्रता के अनुसार अनेको मार्ग बताए गये है जिनका योगग्रन्थों में वर्णन मिलता है। पातंजल योग दर्शन में समाधि के विषय में पूर्णरूप से विवेचन किया गया है। इसमें अभ्यास और वैराग्य, कियायोग (तप, स्वाध्याय, ईश्वर परिधान) तथा अष्टाग्डः योग के द्वारा समाधि सिद्ध होना बताया गया है। पांतजल योग सूत में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते है। चित्त तथा चित्त वृत्तियों के विषय में पूर्व में विवेचन किया जा चुका है। योग समाधि का पर्यायवाची शब्द है। योग (समाधि) सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात भेद से दो प्रकार का होता है। सम्प्रज्ञात समाधि में समस्त चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। अतः असम्प्रज्ञात समाधि में समस्त चित्त ही वास्तविक समाधि है। जिसकी प्राप्ति के लिये ही सम्प्रज्ञात समाधि का निरतंर अभ्यास करना पड़ता है। अस्म्प्रज्ञात समाधि ही स्वरूपा स्थिति है जिसको प्राप्त करना ही योग का अंतिम लक्ष्य है। क्योंकि सर्वदुःखो से ऐकान्तिक और आत्यन्तिक निवृत्ति प्राप्त करने के लिए ही साधक योग मार्ग की अपनाता है। जिसकी निवृत्ति असम्प्रज्ञात समाधि में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो जाने से होती है। इस रूप में असम्प्रज्ञात समाधि तो निर्विवाद योग है ही, किन्तु सम्प्रज्ञात समाधि तो भी योग के अंतर्गत ही आ जाती है क्योंकि उसमें रजस् और तमस् की निवृत्ति होकर सात्विक एकाग्र वृत्ति बनी रहती है। इस अवस्था में तमस् रूपी आवरण तथा रजस् रूपी चञ्जलता नहीं रह जाती इसमें सत्तव के प्रकाश में केवल ध्येय विषयक एकाग्र वृत्ति रहती है। इसलिए इस सम्प्रज्ञात समाधि निष्ठ चित्त को एकाग्र कहते है। समाधि अवस्था के प्राप्त करने में अनेक विघ्न है। मानव के चित्त का बहाव मूलप्रवृत्तयात्मक है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष आदि चित्त को निरंतर प्रेरित करती रहती तथा चंचल बनाये रखती है तृष्णा के कारण मन स्थिर नहीं हो पाता है। अतः इन सबसे चित्त को मुक्त करने के लिए ही यम नियम तथा वैराग्य का पालन करना पड़ता है। इसी प्रकार से इन्द्रियों के बाह्या जगत् के सम्पर्क के द्वारा चित्त पर संस्कार पड़ते है। ये व्युत्थान संस्कार चित्त को कभी भी समाधिस्थ नहीं होने देते है। अतः इससे मुक्ति पाने के लिए आसन, प्राणायाम तथा प्रत्यावहार का अभ्यास करना पड़ता है। जिसका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है। स्मृति के अनन्त विकल्पों से चित्त फिर भी भरा रहता है इनको दूर करके केवल एक ध्येय विशेष पर लगाने के लिए धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करना पड़ता है। इससे चित्त में ध्येय मात्र रह जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ रह ही नहीं जाता। धारणा तथा ध्यान के अभ्यास तक भी चित्त की विषय से भिन्न प्रतीति होती रहती है। जब तक यह चित्त का भासना नहीं समाप्त होता तब तक ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिपुटी समाप्त नहीं होती अर्थात् ध्याता तथा ध्यान भी विषयाकार होकर अपने स्वरूप से रहित होकर नहीं भासते है। समाधि के लिये त्रिपुटी का समाप्त होना आवश्यक है। समाधि में मन लीन लीन हो जाता है मन को लीन करके जब यह अंग समाधि सिद्ध होती है तभी सम्प्रज्ञात समाधि तक पहुंचने का मार्ग खुलता है। जब साधक के संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) किसी भी ध्येय विषय को लेकर उसके

विषय में अप्रत्यक्ष सूक्ष्म आंतरिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस पर संयम कर समता है। यह ज्ञान किस प्रकार से प्राप्त होता है। उसके तो संयम की उस अवस्था में पहुंचकर ही समझा जा सकता है।

उसको तो संयम की उस अवस्था में पहुंच कर ही समझा जा सकता है। योग सूत्र में भी उसको खोलकर नहीं समझाया गया है संयम के द्वारा प्राप्त समाधिस्थ अवस्था में जिसके निम्नतम से उच्चतम तक भिन्न–भिन्न स्तर है, साधारण बुद्धि से उच्चकोटि की बुद्धि उत्पन्न होती है जिसे प्रज्ञा कहा जाता है, अलग–अलग समाधि को प्रज्ञा भी अलग–अलग होती है, जिसके कारण उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान की सीमायें भी अलग–अलग होती है जब साधक संयम को दृढ़ कर लेता है तभी उसको समाधि की प्रथम अवस्था पर पहुंचने का मार्ग प्राप्त होता है, तथा तत्संबंधी प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इस प्रज्ञा के प्रकाश में अग्रिम सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में पहुंचकर तत्सम्बन्धी प्रज्ञा प्राप्त होकर आगे का मार्ग पर चलकर योगी चारों सम्प्रज्ञात समाधियों को पारकर विवेक ज्ञान प्राप्त करता है जिसके द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा उत्पन्न होती है और अंत में ऋतम्भरा प्रज्ञा के प्रकाश से असम्प्रज्ञात, समाधि का मार्ग प्रकाशित हो जाता है तथा योगी उस मार्ग पर चलकर असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त कर कैवल्य प्राप्त करता है। सम्प्रज्ञात समाधि चित्त की एकाग्र अवस्था है जिसमें चित्त किसी एक ही विषय में लगा रहता है। इसमें चित्त किसी विषय विशेष के साथ एकाकार वृत्ति धारण कर लेता है। इसमें ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य सब वृत्तियों का निरोध हो जाता है। यह अवस्था सत्वगुण प्रधान होती है। इसमें रजोगुण और तमोगुण तो केवल वृत्तिमात्र होते है। इस अवस्था में चितत बाह्म विषयों के रज और तम से प्रभावित नहीं होता जिससे कि वह सुख दुःख चञचलता आदि से तटस्थ रहता है। इसीलिये इस अवस्था में चित्त अत्यधिक निर्मल और स्वच्छ होता है। निर्मल और स्वच्छ होने के कारण ध्येय विषय का यथार्थ ज्ञान साधक को होता है। अन्य समस्त विषयों से चित्त हटकर केवल ध्येय विषय पर ही स्थिति रहने से सत्य का प्रकाश में ध्येय वस्तु के स्वरूप का संशय विपर्यप रहित यर्थाथ ज्ञान प्राप्त होता है। उस भावना विशेष को ही सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। समस्त विषयों को छोड़कर केवल ध्येय विषय को हो चित्त में निरतंर रखते रहने का नाम भावना है।

वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि, विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि, आनन्दागुगत सम्प्रज्ञात समाधि तथा अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के से सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार की होती है।

योग में ईश्वर, पुरूष, प्रकृति, महत्, अंहकार, मन, पञचज्ञानेन्द्रिय, पञचकामेन्द्रिय, पञचतन्मात्रा तथा पञचमहाभूत ये छब्बीस तत्व माने गये है जो कि ब्राह्मग्रहण, ग्रहीता इन तीनों विभागों में विभक्त है। स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से ग्राह्म विषय दो प्रकार के होते है। पञचमहाभूत स्थूल विषय होने के कारण स्थूल ग्राह्म है। स्थूल इन्द्रियॉ, शरीर, सूर्य, चन्द्र तथा अन्य समस्त भौतिक पदार्थ इसके अंतर्गत आ जाते है। पञचतन्मात्राऍ सूक्ष्म एकादश इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ग्रहण होता है, अतः ये एकादश सूक्ष्म इन्द्रियॉ ग्रहण कही जाती है। अंहकार जो कि एकादश इन्द्रियों का कारण है, सूक्ष्म ग्राह्म विषय है। अस्मिता (पुरूष प्रतिबिम्बित चित्त) को ग्रहीता कहते है। एकाग्रता स्थूल से सूक्ष्म विषय की तरफ को अभ्यास के द्वारा चलती है। योगाभ्यासी ठीक निशाना लगाने का अभ्यास करने वाले के समान स्थूल विषय से सूक्ष्म विषय की तरफ योगाभ्यास को बढ़ाता चलता है। जिस प्रकार से निशाना मारने वाला स्थूल लक्ष्य के भेदन का अभ्यास करके सूक्ष्म लक्ष्य के भेदन अभ्यास करता है ठीक उसी प्रकार साधक प्रथम स्थूल ध्येय की भावना का अभ्यास करता है, जिसके परिपक्व होने पर ही वह सूक्ष्म ध्येय विषयक भावना के अभ्यास में प्रवृत्त होता है, अन्यथा नहीं। इस अभ्यासक्रम के अनुसार हो सम्प्रज्ञात समाधि के उपर्युक्त चार विभाग हो जाते है। सब व्यक्तियों की रूचियॉ भिन्न–भिन्न होती ह। हर विषय में चित्त नहीं लगता है। अतः व्यक्ति को अपनी श्रद्धा तथा रूचि के अनुसार अपने इष्ट में चित्त को लगाना चाहिये। उसमें ध्यान लगाने से चित्त एकाग्र हो जाता है। चित्त का ऐसा स्वभाव है कि अगर वह एक विषय पर स्थिर हो जाता है तो वह अन्य विषयों पर भी स्थिर हो जाता है अतः अपने

इष्ट पर ध्यान करने से मन में स्थैर्य शक्ति पैदा हो जाती है। अभ्यास के द्वारा जब साधक के चित्त में स्थिति की योग्यता प्राप्त हो जाती है तब वह जहां चाहें वहीं चित्त को स्थिर कर सकता है साधक का चित्त के ऊपर पूर्ण अधिकार हो जाता है अर्थात् उसका चित्त पूर्ण रूप से उसके वश में हो जाता है और वह उसे बिना किसी अन्य साधन के और सभी विषयों पर भी बिना किसी अड़चन के स्थिर कर सकता है। सूर्य चन्द्रमा, हनुमान, शिव, विष्णु, ब्रह्म, गणेश आदि देवताओं के मनोहर दिव्य स्वरूपों में किसी एक स्वरूप में जिसमें उसकी विशेष रूचि हो चित्त लगाना चाहिए। इन तदाकार देवमूर्तियों के ऊपर चित्त को स्थिर करने का अभ्यास करने से जब चित्त में स्थिरता प्राप्त हो जाती है तब वह चित्त निर्गुण निराकर, विशुद्ध, अखण्ड परमेश्वर में भी स्थिर किया जा सकता है, सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय परमाणु होता है तथा बड़े से बड़े विषय में आकाश आदि आते है। जब इन दोनों में चित्त की स्थिरता का अभ्यास दृढ़ हो जाता है अर्थात् इन दोनों में से जिस पर भी इच्छा की जाये उसी पर चित्त को स्थिर पर सकने की शक्ति पैदा हो जाती है तब ही चित्त को स्थिर करने का निरतंर अनुष्ठान करते रहने पर चित्त को सूक्ष्म तथा स्थूल किसी भी ध्येय विषय पर स्थित करने की सामर्थ्य साधक को प्राप्त हो जाती है। यही चित्त पर का परम वशीकार है। इस प्रकार से जब साधक का चित्त पर पूर्ण अधिकार हो जाता है तब चित्त स्वच्छ तथा निर्मल हो जाता है। उपर्युक्त उपायों से स्वच्छ चित्त को तुलना स्फटिक मणि से की गई है अर्थात् इन दोनो में से जिस पर भी इच्छा की जाये उसी पर चित्त को स्थिर पर सकने की शक्ति पैदा हो जाती है तब ही चित्त को स्थिर करने का निरतंर अनुष्ठान करते रहने पर चित्त को सूक्ष्म तथा स्थूल किसी भी ध्येय विषय पर स्थित करने की सामर्थ्य साधक को प्राप्त हो जाती है। यही चित्त पर का परम वशीकार है। इस प्रकार से जब साधक का चित्त पर पूर्ण अधिकार हो जाता है तब चित्त स्वच्छ तथा निर्मल हो जाता है। उपर्युक्त उपायों से स्वच्छ चित्त को तुलना स्फटिक मणि से की गई है अर्थात् चित्त अभ्यास के द्वारा स्फटिक मणि के समान अति निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। चित्त की अभ्यास से रजस और तमस की चञ्चल तथा आवरण रूप वृत्तियां क्षीण हो जाती है और चित्त सत्व के प्रकाश से प्रकाशित हो उठाता है। वह सात्विकता के कारण इतना स्वच्छ और निर्मल हो जाता है कि जिस प्रकार से स्फटिक मणि के सानिध्य में लाल, पीली, नीली, जिस रंग की भी वस्तु आती है उसी तरह से वह स्वयं भी प्रज्ञीत होने लगती है, ठीक उसी प्रकार से स्थूल विषय, सूक्ष्म विषय एकादश इन्द्रियॉ अंहकार अथवा अस्मिता किसी पर भी चित्त को लगाने से चित्त उस ध्येय विषय में स्थित होकर उस विषय के आव वाला हो जाता है। अर्थात् चित्त उस विषय के स्वरूप को धारण करके उस विषय का साक्षत्कार करा देता है। इस प्रकार के ज्ञान में संशय भ्रम आदि की सम्भावना भी नहीं रह जाती है चित्त के इस प्रकार से विषयाकार होकर उस विषय के स्वरूप को धारण करने की इस अवस्था को ही सम्प्रज्ञात समाधि कहते है।

इस प्रकार से निर्मल चित्त पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाञ्च स्थूल भूतों में से किसी एक से सन्निधान से उसी स्थूल भूत के आकार का होकर भासने लगता है तथा उसका संशय, विपर्यप रहित यथार्थ ज्ञान प्रदान करता है। चित्त किसी भी स्थूल, भौतिक, ध्येय विषय के सन्निधान से उसी ध्येय विषय के आकार वाला होकर उसका ज्ञान प्रदान करता है। यह इस प्रकार से सात्विक चित्त का स्थूल विषयाकर होकर भासना वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है। इसमें स्थूल पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का संशय विपर्यय रहित समस्त स्थूल विषयों सहित साक्षात्कार होता है। इसी प्रकार से पञ्चतन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, ग्रन्थ) में चित्त के तदाकार हो जाने पर चित्त उन्हीं तन्भावाओं के आकार का होकर भासने लगता है। चित्त इस प्रकार से तन्मात्राओं तथा इन्द्रियों के आकार वाला होकर समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म ग्राह्म विषयों का संशय विपर्यय रहित ज्ञान प्रदान करता है।

चित्त की इस तन्मात्राओं तथा शक्तिरूप इन्द्रियों के आकार के होनेवाली अवस्था को ही विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। शुद्ध सात्तिक निर्मल चित्त जब अंहकार के आकार वाला होकर भासता है तो उस अवस्था को आन्दानुगल सम्प्रज्ञात

समाधि करते है। इसमें साधक समस्त विषयों सहित अंहकार का संशय विपर्यय रहित साक्षात्कार कर लेता है। जब चित्त अस्मिता (पुरूष प्रतिविम्बित चित्त) के आकार वाला होकर भासने लगता है तो चित्त की उस अवस्था को अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। इस अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में अस्मिता के यथार्थ रूप का भ्झी साक्षात्कार होता है। (इस समाधि को नीचे दिये एक वृत्तकार चित्र से समझाया जाता है) उपर्युक्त चित्र में बाह्मवृत अनन्त स्थूल विषयों को व्यक्त करता है जिन अनन्त स्थूल विषयों में से किसी एक विषय 'क' पर संयम का अभ्यास प्राप्त साधक जब समाधि अवस्था प्राप्त करता है तो उस साधक को उस विशिष्ट ध्येय विषय के साथ–साथ समस्त अन्य स्थूल विषय का भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। समस्त स्थूल विषय पञचमहाभूतो के ही मिश्रित स्थूल रूप है। जब समाधि के द्वारा स्थूल पञचमहाभूतों का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है तब इस समाधि अवस्था को ही वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते है।

इन स्थूल पञचमहाभूतों की उत्पत्ति पञचतन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध) अर्थात् सूक्ष्म विषयों से होती है। एकादश इन्द्रियॉ भी जो कि स्थूल विषयों को ग्रहण करती है। सूक्ष्म है। समाधि का अभ्यास निरतंर चलते रहने पर साधक का प्रवेश सूक्ष्मतर जगत में होने लगता है। अर्थात् साधक की ऐसी अवस्था पहुंच जाती है जिसमें उसे सूक्ष्म, ग्राह्मा विषयों तथा सूक्ष्म एकादश इन्द्रियों का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है। कार्य से कारण के ज्ञान पर पहुंचना तो हो ही जाता है क्योंकि कार्य और कारण का संबंध ही इस प्रकार का है। इस सामाधि की अवस्था को जिसमें पञचतन्मात्राओं तथा एकादशाा सूक्ष्म इन्द्रियों का यथार्थज्ञान प्राप्त होता है विचारानुगतसम्प्रज्ञातसमाधि कहते है। इसके बाद अभ्यास करते रहने पर साधक सूक्ष्म विषयों तथा एकादश इन्द्रियों से भी सूक्ष्म स्तर पर पहुंच जाता है तो उस अवस्था को आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था कहते है। इस आनन्दागुत सम्प्रज्ञात समाधि की प्रज्ञा के प्रज्ञा के प्रकाश में अभ्यास पथ पर चलते रहने से साधक अस्मिता का साक्षात्कार करता है। पुरूष प्रतिबिम्बत चित्त जिसे अस्मिता कहते है। अविद्या बीजरूप से विद्यमान रहती है। यह अस्मिता के साक्षात्कार की अवस्था जो कि अस्तिानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है, सम्प्रज्ञात समाधि की अंतिम अवस्था है। स्थूल विषय 'क' का सम्बन्ध जिसको अनन्त स्थूल विषयों में से अपनी रूचि के अनुसार चुनकर साधक ने ध्येय बनाया है, अस्मिता से भी है। प्रथम तो यह सीधे रूप से सूक्ष्म भूतों से सम्बन्धित है फिर उन सूक्ष्म भूतों के द्वारा वह पचतन्मात्राओं से पंचतन्मात्राओं के द्वारा अंहकार से तथा अंहकार के द्वारा अस्मिता से संबंधित है। इस प्रकार से 'क' स्थूल विषय पर ही समाधिस्थ होने से साधक अभ्यास वृद्धि करते–करते अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को पारक विवेक ज्ञान प्राप्त कर लेता है तथा उसके याद ऋतुम्भरा प्रज्ञा के उत्पन्न होने पर अस्म्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त कर कैवल्य प्राप्त करता है इस चित्र में साधक मातों एक विशेष प्रकार के कारागार में है जो इस प्रकार से निर्मित है कि कारागार से मुक्त होने के लिए उसे आठ कारागारों से मुक्त होना पड़ता है। जब यम, नियम आदि अष्टांगों के अभ्यास से साधक प्रथम कारागार को समाप्त करने से साधक प्रथम कारागार को समाप्त करने में समर्थ होता है तथा दूसरे कारागार को सीमा में पहुंचता है तो उसको प्रज्ञा का प्रकाश मिलता है जिससे वह दूसरे कारागार को समाप्त करने योग्य हो जाता है इस प्रकार से वह वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में पहंच जाता है। इसी प्रकार से दूसरे कारागार के प्रकाश में तीसरे कारागार को समाप्त करने योग्य हो जाता है और चौथे अधिक प्रकाशित कारागार के बड़े दायरे में पहुंच जाता है। इस तरह से साधक एक–एक कारागार के दायरे को पार करता हुआ अंत में पूर्णरूप से कारागार से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है। यहीं कैवल्य अवस्था है उपनिषदों में इसी को पंच कोषों के द्वारा समझाया गया है। अन्नमय कोष से आत्माध्यास हटाकर प्राणमय कोष में प्रवेश करना प्राणमय कोष से आत्मा ध्यास हटाकर मनोमय कोष में प्रवेश करना मनोमय कोष से आत्माध्यास हटाकर विज्ञानमय कोष में पुहंचना विज्ञानमय कोष से आत्माध्यास हटाकर आनन्दमय कोष में पहुंचना तथा इस आनन्दमय कोष से भी आत्मध्यास हटाकर साधक मुक्त हो जाता है। इनमें प्रथम चार अवस्थाओं तो सम्प्रज्ञात समाधि की है तथा अंतिम अवस्था

असम्प्रज्ञात समाधि की है तथा अंतिम अवस्था असम्प्रज्ञात समाधि की है। इसको दूसरे प्रकार से भी समझाया जा सकता है। शुद्ध आत्मा अनेक आवरणों से आवृत है और जब तक एक–एक करके वे आवरण नहीं हटाये जायेगें तब तक वह शुद्ध चेतन तत्व अपने स्वरूप में पूर्णरूप से प्रकाशित नहीं हो सकता आत्मा पर सबसे पहला खोल वा आवरण निगुणात्मक चित्त का है। उस चित्त के खोल व चिमनी के रंग के अनुसार ही आत्मा का प्रकाश प्रस्फुटित होता है। आत्मा इस चित्त में प्रतिबिम्बित होकर अस्मि रूप से भासता है अर्थात् इसमें शब्द अर्थ और ज्ञान के विकल्प सम्मिलित रहते है। तीनों भिन्न–भिन्न पदार्थ होते हुये भी उनका इस अवस्था में अभेद रूप से भाग होता है शब्द उसे कहते है जिसे श्रोत्रेन्द्रियॉ ग्रहण किया जा सकता है, जैसे घोड़ा एक शब्द है जो कि श्रोत्रेन्द्रिया के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। अर्थ से तात्पर्य उसका है जो शब्द सुनने पर हमें विशिष्ट जाति आदि का बोध कराता है जैसे 'घोड़ा' (चार पैर, दोकान तथा पूछ वाला एक विशिष्ट पशु) ज्ञान का सत्व प्रधान बुद्धि वृत्ति है जो शब्द और अर्थ दोनों का प्रकाश करती है जैसे घोड़ा शब्द की और उसके अर्थ घोड़ा दोनों को सम्मिलित रूप से बतलाती है। कि घोड़ा शब्द का ही 'घोड़' रूपी विशिष्ट पशु अर्थ है। 'घोड़ा शब्द 'घोड़ा' व्यक्ति विशेष तथा घोड़े व्यक्ति विशेष का ज्ञान ये तीनों भिन्न–भिन्न होते हुए भी अभिन्न होकर भासते है। शब्द अर्थ और ज्ञान का संबंध इस प्रकार का है कि इन तीनों में अभेद न होते हुए भी अभेद भासना ही इस स्थल पर परस्पर मिश्रण है। यह ज्ञान विकल्प रूप हुआ। इसमें समाधिरूप चित्त तीनों के मिश्रित आकार वाला हो जाता है। इस प्रकार से अगर विचार किया जाये तो घोड़ा शब्द कण्ठ के द्वारा उच्चारित होता है घोड़ा शब्द का तात्पर्य अर्थ विशिष्ट व्यक्ति से जो कि कान पैर पूँछ वाला मूर्त पदार्थ है, होता है और घोड़े का ज्ञान चित्त स्थित प्रकाशत्व है। इस प्रकार से यह तीनों भिन्न होते हुए भी अभिन्न भासने के कारण विकल्परूप ही है। प्रारंभ में जब योगी उपर्युक्त किसी स्थूल ध्येय विशेष पर ही स्थित करता है तो सर्व प्रथम उसे उस ध्येय विषेश के नाम रूप और ज्ञान के विकल्पों से मिश्रित अनुभव प्राप्त होता है उसके स्वरूप के अलावा उसके नाम और ज्ञान के आकार वाला भी चित्त हो जाता है। इसलिए इस समाधि को सवितर्क समाधि कहा गया है। हर समाधि में समधिप्रज्ञा निश्चित रूप से विद्यमान रहती है। समाधि और प्रज्ञा अविनाभावी है। एक के बिना दूसरा नहीं रहता। सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि में समाधि प्रज्ञा विकल्प वाली होती है। इसीलिए इस प्रकार की प्रज्ञा उच्चकोटि की योगज प्रज्ञा नहीं है। किन्तु अभ्यास के प्रारंभ में तो सर्वप्रथम यहीं योगज प्रज्ञा प्राप्त होती है और इस प्रकार की योगज प्रज्ञा को ही सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। इस समाधि का प्रज्ञा में जो उपर्युक्त पदार्थो की प्रतीति होती है वह प्रत्यक्ष प्रतीति होती है। सवतर्क सम्प्रज्ञात समाधि में अपर प्रत्यक्ष प्रतीति होती है। पर प्रत्यक्ष प्रतीति तो निर्वितर्क सम्प्राात समाधि में ही होती है।

1. वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि :– सम्प्रज्ञात समाधि की पहली अवस्था वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त स्थिर होकर ध्येय विषयकार होता है। किसी भी स्थूल ध्येय में चित्त के एकाग्र होने से उस ध्येय को प्रकाशित करने वाली ज्योति उत्पन्न होती है। यह ज्योति सदैव योगी के साथ रहती है। योगी न जब जिस विषय को जानना चाहा तभी उस विषय को इस ज्योति के द्वारा जान लिया। यही प्रज्ञा कही जाती है। वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि स्थूल विषय के द्वारा प्राप्त होती है। स्थूल विषय ही इसका आधार है। इसमें स्थूल रूप की साक्षात्कारिणी प्रज्ञा होती है। स्थूल विषय ही इसका आधार है इसमें स्थूल रूप की साक्षात्कारिणी प्रज्ञा होती है। वितर्कान्वयी वृत्ति इस प्रथम प्रकार की सम्प्रज्ञात समाधि में होती है। वे सब स्थूल विषय कहलाते है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, देव, मूर्ति, शरीर, स्थूल, इन्द्रियॉ तथा गौ, घट पट आदि सभी स्थूल विषय के अंतर्गत आ जाते है। अपनी रूपी तथा रूझान के अनुसार इन उपर्युक्त किसी भी स्थूल विषयों में चित्त को एकाग्र करके जो ग्रह्मा विषयक प्रज्ञारूप भावना विशेष उत्पन्न होती वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। इस वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में ध्येय विशेष (जिसके ऊपर चित्त को एकाग्र किया जाता है।) के यथार्थ स्वरूप का समस्त स्थूल विषयों

सहित जो पूर्व में कभी भी न देखे, न सुने, न अनुमान किये गये थे संशय विपर्यय रहित साक्षात्कार प्राप्त होता है। प्रज्ञा के प्रकाश में जिस स्थूल विषय को योगी जब जानना चाहता है तब ही ज्ञान लेता है। यह सम्प्रज्ञात समाधि की प्रथम अवस्था है। अभी तक पाश्चात्य विज्ञान पूर्णरूप से प्रयत्नशील होने के बाद भी अपनी वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा इस वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के द्वारा प्राप्त ज्ञान को भी प्रदान नहीं कर पाया है। इसके ज्ञान का क्षेत्र स्थूल जगत ही है। अभी तक विज्ञान अपने इस स्थूल भौतिक जगत के सम्पूर्ण ज्ञान को अन्वेषणों के द्वारा उसके प्राप्त होने की आशा ही है। वैज्ञानिक अन्वेषणों में भी जो कुछ किसी ने प्राप्त किया है वह सब किसी न किसी प्रकार की समाधिस्थ अवस्था में पहुंच कर ही किया है। वह सारा वैज्ञानिक ज्ञान भी एकाग्रता की ही देन है। वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की होती है। सवितर्क और निर्वितर्क।

क. सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि :–सम्प्रज्ञात समाधि की इस अवस्था में शब्द अर्थ तथा ज्ञान रूप अलग–अलग पदार्थो की अभिन्न रूप में प्रतीति होती है।

ख. निर्वितक सम्प्रज्ञात समाधि :7 सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि के निरंतर अभ्यास करते रहने पर निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। इस निर्वितक सम्प्रज्ञात समाधि में शब्द और ज्ञान की स्मृति लुप्त हो जाती है अर्थात् चित्त में ध्येय विषय के नाम तथा उस विषय से विषयाकार होने वाली चित्त वृत्ति दोनों की ही स्मृति नहीं रहती इस स्थिति में चित्त के अपने स्वरूप की प्रतीति न होने के कारण उसके अभाव की सी स्थिति उपस्थित हो जाती है। इसी प्रकार की अवस्था में चित्त समस्त विकल्पों से रहित होकर केवल ध्येयाकार होकर ध्येयमात्र को ही प्रकाशित करता है। सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि में तो चित्त में शब्द, अर्थ, और ज्ञान तीनों का भाव होता है अर्थात् चित्त तीनों के आका समाधि की अवस्था में चित्त की एकाग्राता इतनी बढ़ जाती है कि शब्द और ज्ञान की स्मृति भी नहीं रह जाती। उसमें केवल ध्येय मात्र स्वरूप का साक्षात् करता है। इस निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में चित्त ध्येय विषयाकार होकर केवल ध्येय मात्र का साक्षात्कार समस्त विकल्पों रहित करवाता है किन्तु इसे यह नहीं समझना चाहिए कि चित्त अपने ग्रहणात्मक स्वरूप से बिल्कुल रहित हो जाता है क्योंकि ऐसा होने पर तो वह अपने ग्राह्मा ध्येय के स्वरूप की धारणा भी नहीं कर सकेगा। ''स्मृतिपरिशुद्धो स्वरूपशून्येवार्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का।।''

पा.यो.सू.–1143

इस उपर्युक्त सूत्र से तो इतना ही कहा जा सकता है कि चित्त ध्येय विषय में इतना लीन हो जाता है कि वह अपने ग्रहणात्मक स्वरूप से शून्य सा होकर भासता है। सचमुच में वह शून्य नहीं होता। ध्येय विषय से तदाकारता प्राप्त होने के कारण शून्य सा प्रतीत होता है किन्तु होता नहीं। जैसा कि उपर्युक्त सूत्र के 'स्वरूपशून्या इव' से स्पष्ट हो जाता है। इव शब्द से यह व्यक्त होता है कि चित्त अपने ग्रहणात्मक स्वरूप से एकदम शून्य नहीं होता है। निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि में केवल ध्येय विषय का ज्ञान ही यथार्थ रूप से प्राप्त होता है। एकाग्राता की वह अवस्था पहुंच जाती है सिजमें ध्येय के अतिरिक्त अन्य कुछ भी प्रकाशित नहीं होता। इस निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि का आधार सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि ही है। सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि में शब्द और ज्ञान के साथ में ही अर्थ व की स्मृति होती है और अर्थ ज्ञान के साथ नाम की स्मृति होती है। इस अवस्था में शब्द और अर्थ को पृथक–पृथक सत्ता होते हुए भी दोनों का चिन्तन परस्पर अविनाभाव रूप से होता है।

2. विचारानगुत सम्प्रज्ञात समाधि :– वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि के अभ्यास के निरतंर चलते रहने पर साधक की एकाग्रता का प्रवेश सूक्ष्म विषयों तथा सूक्ष्म शक्तिरूप इन्द्रियों तक पहुंच जाता है और साधक पञ्चतन्मात्राओं (शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध) तथा शक्ति मात्र इन्द्रियों के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार करता है। इस अवस्था विशेष का नाम विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है। इस अवस्था विशेष का नाम विचारानगुत सम्प्राज्ञात समाधि है। इस अवस्था विशेष का नाम विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है। इस अवस्था विशेष में पञ्चतन्मात्राओं तथा शक्तिमात्र इन्द्रियों का संशय विपर्यय रहित समस्त विषयों सहित साक्षात्कार होता है। कारण का यथार्थ ज्ञान होने पर कार्य का यथार्थ ज्ञान स्वतः हो जाता है क्योंकि कारण में कार्य निश्चित रूप से विद्यमान रहता है। सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राओं तथा सूक्ष्म शक्तिमात्र इन्द्रियों के यथार्थ ज्ञान प्राप्त होने पर उनके कार्य का स्थूल पञ्चमहाभूतात्मक समस्त विषयों का ज्ञान निश्चित ही है। इस कारण से विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को पार किए विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था तक नहीं पहुचां जा सकता। जिस प्रकार से निशाने का अभ्यास करने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य के भेदन का अभ्यास करके सूक्ष्म भेदन की तरफ चलता है। जैसे सूक्ष्म भेदन का अभ्यास हो जाने पर स्थूल भेदन तो निश्चित रूप से हो ही जाता है क्योंकि वह उसमें निहित है, ठीक उसी प्रकार से एकाग्रता जब सूक्ष्म विषयों तथा सूक्ष्म इन्द्रियों तक पहुंच जाती है। स्थूल विषयों के ज्ञान में तो कोई सक्षय रह ही नहीं जातीं। इस प्रकार से जब योगी को विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध हो जाती है। तब वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि तो फिर स्वतः ही सिद्ध है। जैसे जिसे 100 गज तक दिखलाई देता है उसे 50 गज तक तो निश्चित ही दिखलाई देगा। इस विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि को अवस्था से ज्ञान की परिधि अपेक्षाकृत विस्तृत हो जाती है। साधक का सूक्ष्मतर जगत में प्रवेश हो जाता है। उसे वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में प्राप्त स्थूल विषयक ज्ञान का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता क्योंकि वह ज्ञान तो इसमें निहित ही है। इस प्रकार से यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि उत्तर की समाधियों में पूर्व की समाधियों का सम्पूर्ण ज्ञान निहित होता है। विचारनुगत सम्प्रज्ञात समाधि के सविचार और निर्विचार दो भेद हो जाते है।

निर्विचार सम्प्रज्ञात समधि :– जब चित्त अपने स्वरूप से शून्य सा होकर देश काल, कार्य कारण रूप विशेषणों के ज्ञान रहित तथा शब्दे और ज्ञान के विकल्पों से शून्य केवल सूक्ष्म भूत (परमाणु) ध्येय विषयाकार होकर ही प्रकाशित होता रहता है, जब उस अवस्था विशेष ही निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। इसमे शब्द आदि से मिश्रित स्मृति नहीं रह जाती है। इसमे केवल शूक्ष्म ध्येय विषय ही प्रकाशित होता रहता है। यह निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि के समान ही विकल्प रहित अवस्था है। इसमे चित्त विकल्प रहित समाधि भावों से परिपूर्ण रहता है। इस निर्विचार समप्रज्ञात समाधि की अवस्था में चित्त देश, काल तथा निमित्त के विशेषणो से युक्त नहीं होता है। इस अवस्था में ध्येय विषय का सर्वदेशिक, सर्वकालिक तथा सर्वधर्मयुक्त ज्ञान प्राप्त होता है। सविचार सम्प्रज्ञात समाधि प्रज्ञा देश काल तथा निमित्त विशेषण से युक्त होती है।

सविचार सम्प्रज्ञात समाधि के निरन्तर अभ्यास के व्दारा निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि प्रज्ञा अत्पन्न होती है जो सूक्ष्म विषय को किसी देश विशेष,काल विशेष, तथा धर्म विशेष के रूप से प्रकाशित नहीं करती, बल्कि उस सूक्ष्म विषयाकार ही भासता है। अर्थात इस अवस्था विशेष में केवल ध्येय विषय का ही देश काल निमित्त से रहित यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। इस अवस्था में भी सूक्ष्मभूतो की सूक्ष्मता का न्यूनाधिक अनुपात तन्मात्राओं तक चला जाता है। इसके अन्तर्गत अनेक सूक्ष्म अवस्थाएॅ आ जाती है जो कि सत्वप्रधान होने के कारण संकल्पमयी और आनन्दमयी अवस्थाएॅ है। सात्विकता और सूक्ष्मता के अनुपात के अनुसार ही इन सूक्ष्म अवस्थाओं के संकल्पो और आनंदों के अनुपात में भी विभिन्नता आती है। सूक्ष्म अवस्थाएॅ ही सूक्ष्म लोक है। जिसमें इस समाधि अवस्था के द्वारा प्रवेश होता है। चित्त इस अवस्था में सत्व के द्वारा अपेक्षाकृत स्वच्छ और निर्मल हो जाता

है। इसी कारण से उसका समस्त व्यवहार शुद्ध और सत्य होते है। उसको अनेक विचित्र दृश्य दिखलाई देते है। देवताओं आदि के दर्शन तथा विलक्षण प्रकाश साधक को प्राप्त होते है।

संदर्भग्रंथ :–

1. *पंतजलि योग दर्शन नंदलाल दशोरा रणधीर प्रकाशन हरिद्वारा*
2. *पंतजलि योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर*
3. *पतंजलि योग सूत्र वेदानंद सरस्वती योग विद्यालय मुगेर बिहार*
4. *धेरण्य संहिता स्वमी निरजंनानंद योग पब्लिकेशन ट्रष्ट बिहार स्कूल ऑफ योग मुगेंर।*